International Journal of Applied Research 2017; 3(7): 1064-1065

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(7): 1064-1065
www.allresearchjournal.com
Received: 18-05-2017
Accepted: 22-06-2017

डॉ. अशोक कुमार गुप्ता
वरिष्ठ व्याख्याता–हिन्दी
एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अशोक कुमार गुप्ता
वरिष्ठ व्याख्याता–हिन्दी
एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान, भारत

वैष्णव भक्तः कवि सूरदास की भक्ति साधना

डॉ. अशोक कुमार गुप्ता

सारांश
हिंदी साहित्य में भारतीय साधना के स्वरूप की एक अद्वितीय परंपरा रही है। यज्ञ, तप, ज्ञान, योग और भक्ति के रूप में साधना की अजस्र धारा वैदिक काल से आज तक निरन्तर प्रवाहित हैं। भक्ति सदैव मानव की सहज और सरल प्रकृति के साथ अभिव्यक्त होती रही हैं। श्रीमद्भागवद् गीता में निष्काम भक्ति योग को भगवद् प्राप्ति का सरलतम साधन माना है। इसके पश्चात् भागवत धर्म के अन्तर्गत भक्ति परंपरा का विकास क्रम निरन्तर जारी रहा जो दक्षिण भारत के 'आलवार' वैष्णव भक्तों से प्रारंभ होकर सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैल गया और यह वैष्णव भक्ति साहित्य का प्राण तत्व बना।
उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति को प्रचलित करने में स्वामी रामानंद और स्वामी वल्लभाचार्य का विशेष योगदान रहा। इसी परंपरा में स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित कृष्ण भक्तिधारा के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि सूरदास हुए जो अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं पुष्टिमार्ग के जहाज कहलाए। वैष्णव भक्त कवि सूरदास ने भक्तिसाधना के लिए प्रेमतत्व को प्रमुखता दी। वे श्रीमद्भागवत में वर्णित अकाम और सकाम दोनों प्रकार की भक्ति को स्वीकारते हैं साथ ही नवधा भक्ति का मनोयोगपूर्वक अपने साहित्य में वर्णन करते हैं। उनकी भक्तिसाधना वैष्णवी है। वे इस क्षेत्र के उच्च कोटि के कवि हैं। भक्ति उनकी रग–रग में समाई हुई है, वे कहते हैं– ''रे मन मूरख जनम गंवायौ। करि अभिमान विषय रस गीध्यौ, स्याम सरन नहिं आयौ।'' यह स्पष्ट है कि सूरदास वैष्णव भक्त कवियों में अपना शीर्ष स्थान रखते हैं।

मुख्य शब्दः वैष्णव भक्त, भक्ति साधना

प्रस्तावना
भारतीय साधना के स्वरूप की एक अनुपम परम्परा रही है। यज्ञ, तप, योग, ज्ञान और भक्ति के रूप में साधना की यह अजस्र धारा वैदिक काल से वर्तमान तक निरन्तर प्रवाहित होती रही है। इसमें भक्ति का स्वरूप अपनी निजी पहचान रखता है। भक्ति सदैव मानव की सहज और सरल प्रकृति के साथ अभिव्यक्ति होती रही है। वैदिक युग में भक्ति का स्वरूप सरल था। पौराणिक युग में यज्ञ का आकर्षण बढ़ा और ब्राह्मणों के कर्मकाण्डों की बहुलता ने साधना के इस स्वरूप को क्लिष्ट और दुरूह बना दिया। भक्ति के स्वरूप को यदि हम जानें तो यह वेदों में ईश महत्ता व ईशोपासना के मंत्रों के रूप में, उपनिषदों में ज्ञानमार्गी व कर्ममार्गी चिन्तन के रूप में, पुराणों में नवधा भक्ति के सम्पूर्ण स्वरूप में तथा श्रीमद्भागवद्गीता में निष्काम भक्तियोग को भगवद् प्राप्ति का सरलतम साधन माना गया है। इसके पश्चात भी भागवत धर्म के अन्तर्गत भक्ति परम्परा का विकास क्रम जारी रहा जो दक्षिण भारत के 'आलवार' (वैष्णव भक्त) भक्तों से शुरू होकर सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैल गया और वैष्णव साहित्य का रस–प्राण बना।
वैष्णव भक्ति आन्दोलन को उत्तर भारत में प्रचलित करने का श्रेय स्वामी रामानंद और स्वामी वल्लभाचार्य को है। स्वामी रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में स्वामी रामानन्द जी हुए जिन्होंने विक्रम की 14वीं शताब्दी में विष्णु के अवतार के रूप में श्रीराम की प्रतिष्ठा की और स्वामी वल्लभाचार्य ने विष्णु के अवतार के रूप में श्री कृष्ण की भक्ति का प्रचार–प्रसार किया। स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित कृष्ण भक्ति धारा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि सूरदास हुए जो अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं पुष्टिमार्ग के जहाज के रूप में माने गये। इनके साहित्य सृजन में 'सूरसागर', 'साहित्य–लहरी' और 'सूरसारावली' प्रमुख ग्रन्थ हैं। इनमें 'सूरसागर' सूरदास की प्रसिद्ध रचना है। इस ग्रन्थ का वर्ण्य–विषय श्रीमद्भागवत की कला से बहुत साम्य है, यद्यपि इसमें सूरदास की मौलिकता के दर्शन होते हैं। विद्वानों के मतानुसार 'सूरसागर' में रस का सागर हिलोरें लेता है। यह 'सूरसागर' सचमुच रस के सागर–सदृश गहन–गम्भीर रस–रत्नाकर है। इसमें दाम्पत्य प्रेम, वात्सल्य और भक्ति सम्बन्धी अनेक पद रस–सिद्धि की दृष्टि से अप्रतिम है। सूर की भक्ति तब और भी तीव्र हुई जब वल्लभाचार्य जी ने सूरदास का गायन सुनकर ये बात कही–''सूर ह्वै है कें ऐसो घिघियात काहे को है कछू भगवत्लीला वर्णन करि।''

स्वामी वल्लभाचार्य जी ने भक्ति की साधना के लिए प्रेम तत्व को अपनाया। इसी प्रेम तत्व की पुष्टि में सूर की वाणी प्रवृत्त हुई। सूरदास के लिए राम और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। 'सूरसागर' में कई ऐसे स्थल आते हैं जिसमें सूर ने कृष्ण की स्तुति इस प्रकार की है कि मानो राम और कृष्ण एक ही हों। इसी विचार से सहमत होकर डॉ. हरवंश लाल शर्मा सूर की भक्ति भावना के विषय में लिखते हैं–''वह साम्प्रदायिकता से बहुत दूर थे और भागवत का अनुसरण करते हुए भी भागवत निरपेक्ष थे।'' सूरदास की भक्ति भावना अनेक रूपों में प्रकट होती है। वे श्रीमद्भागवत में वर्णित अकाम और सकाम दोनों प्रकार की भक्ति को स्वीकारते हैं साथ ही नवधा भक्ति का मनोयोगपूर्वक वर्णन करते हैं–श्रवण कीर्तन पादरत, अरचन वन्दन दास। सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।।

सूरदास ने ब्रह्म के दोनों रूपों का चित्रण किया जिसमें वे निर्गुण की अपेक्षा सगुण के मार्ग को अपेक्षाकृत सरल, सरस व व्यावहारिक मानते हैं। वे कहते हैं–

अविगत गति कछु कहत न आवै।
X X X X
रूप–रेख–गुन–जाति जुगति बिनु निरालम्ब कित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातै सूर सगुन–पद गावै।।

इसी तरह सूरदास ने पुष्टिमार्गी भक्ति पद्धति के समस्त अवयवों का भी निर्वाह कर भक्ति साधना की। वे लिखते हैं–

जापर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन, बड़ौ सुन्दर सोई, जिहिं पर कृपा करै।
X X X X
सूरदास भगवंत–भजनबिनु फिरि फिरि जठर जरै।।

पुष्टिमार्गी भक्त कवि सेवा–पक्ष को बहुत महत्व देते हैं। इस सेवा पक्ष के तीन अंग हैं–भोग, राग और श्रृंगार। इसके अन्तर्गत गुरु–सेवा, सन्त–सेवा, प्रभु–सेवा, भगवान का श्रृंगार, राजभोग, संध्या–आरती, उत्सव, हिंडौला, बसन्त, फाग आदि का विशेष महत्व है। इन सब अवयवों के चित्रण के कारण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सूर को पुष्टिमार्ग का जहाज बताया और सूरदास के अंत समय के प्रसंग के अन्तर्गत सूरदास की वार्ता–प्रसंग में लिखते हैं–''सो तब श्री गुसाईं जी आप श्रीमुख सों सगरे वैष्णवन सों आज्ञा किये–जो पुष्टि–मार्ग कौ जहाज जात है, सो जाकौ कुछ लेनौ होइ सों लेउ और उहाँ जाय कै सूरदास जी कौ देखौ।''

मध्यकालीन वैष्णव साहित्य में सूर का साहित्य अपने आप में अद्वितीय है। यह साहित्य समस्त मानव जाति के हृदय में भक्ति भाव को जागृत करता है। वैष्णव भक्ति–ग्रन्थों के अनुसार भक्ति के सात सोपानों पर चढ़कर भक्त भगवान के सामने उपस्थित होता है। भक्ति के इन सात सोपानों को भक्ति की सात भूमिकाएँ कहा जाता है। ये भूमिकाएँ हैं –1. दैन्य 2. मान–मर्षिता 3. भय–दर्शन और व्याकुलता 4. भर्त्सना 5. आश्वासन 6. मनोराज्य 7. विचारणा अथवा दार्शनिक सिद्धांत का निरूपण। सूर ने प्रत्येक भूमिका से संबंधित पद लिखे हैं। यथा –'दैन्य' अन्तर्गत सूरदास लिखते हैं –

''प्रभु हौं बड़ी देर कौ ठाढ़ौ। और पतित तुम जैसे तारे तिनहीं में लिखि काढ़ौ।।''इसी तरह ''प्रभु हौं सब पतितन को टीको'' कहकर दीनता व्यक्त की है।

'मान–मर्षिता' में वे कहते हैं–''मेरी तो गति–पति तुम अन्तहि दुख पाऊँ। हौं कहाय तिहारो अब कौन कौ कहाऊँ।'' 'भय–दर्शन और व्याकुलता' का एक उदाहरण देखिये–''अबकै राखि लेहु भगवान। हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम डरिया पारिध साधै बान। ....सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय जय कृपानिधान।'' इसी तरह 'भर्त्सना' भूमिका में कहते हैं–''यहि विधि कहा घटैगो तेरौ। नंदनंदन करि घर कौ ठाकुर आपुन ह्वै रहु चेरो।।'' 'आश्वासन' में लिखते हैं ''जब–जब दीनन कठिन परी। जानत हौं करूणामय स्वामी जन को तब–तब सुगम करी।।''मनोराज्य' का भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है–''कहा कमी जाके रामधनी। सूर कहत जे भजत राम कौं तिनसों हरि सौं सदा बनी।।'' भक्ति की सातवीं भूमिका है 'विचारणा' इसके अन्तर्गत दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन होता है। इसमें सूरदास ने ज्ञान मार्ग की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता और सरलता का प्रतिपादन किया है। सूर के 'भ्रमरगीत' के अन्तर्गत उद्धव–गोपी संवाद इसी के अन्तर्गत आता है।

निष्कर्ष रूप में सूरदास की भक्ति साधना वैष्णवी है। वे उच्च कोटि के कवि हैं। भक्ति उनकी रग–रग में समायी हुई है। वे कहते हैं–''रे मन मूरख जनम गंवायौ। करि अभिमान विषय–रस गीध्यौ, स्याम सरन नहिं आयौ।'' वे हमेशा प्रभु भक्ति में लीन रहना चाहते हैं इसीलिए उनको वैष्णव भक्त कवियों में श्रेष्ठ स्थान मिला है। इस संबंध में विद्वान डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं–''मध्यकालीन वैष्णव भक्त कवियों में सूरदास का स्थान शीर्ष पर है। जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति और नामदेव की सरस वाग्धारा के रूप में भक्ति–श्रृंगार की जो मंदाकिनी एक विशिष्ट सीमा–कूलों में प्रवाहित होती चली आ रही थी, उसे सूरदास ने जनभाषा के व्यापक धरातल पर अवतरित करके संगीत और माधुर्य से मंडित किया।'' यह निर्विवाद है कि सूर की भक्ति अन्य वैष्णव भक्त कवियों से श्रेष्ठ है और संभवतः यही कारण है कि वे अन्य भक्त कवियों से इतर अपना स्थान रखते हैं। जैसा कि उनकी प्रशस्ति में अनेक काव्योक्तियाँ प्रचलित हैं–

सूर–सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास।।1।।
तत्व–तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठि।
बची खुची कबिरा कही, और कही सब झूठि।।2।।
किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यो, तन मन धुनत सरीर।।3।।

अन्त में इस वैष्णव भक्त कवि को प्रणाम; जिन्होंने अपनी भक्ति साधना से अमरत्व को प्राप्त किया। यह अनुपम उपलब्धि कवि को कैसे प्राप्त हुई इस संबंध में कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ की उक्त पंक्तियाँ स्वयं कवि से ही पूछती हैं–

सत्य करे कहो मोरे हे वैष्णव कवि !
कोथा तुमि पेथे छिले एइ प्रेमच्छवि !
कोथा तुमि शिखे छिले एइ प्रेम गान !
विरह तापित ? हेरी काहार नवान !
राधिकार अश्रु आँखि पड़े छिली मने ?

अर्थात् 'हे वैष्णव कवि ! सच बताओ, तुमने यह प्रेम छवि कहाँ से प्राप्त की? यह विरह–तप्त गान तुमने कहाँ से सीखा ? किसकी आँखें देखकर तुम्हें राधिका की आँसू भरी आँखे याद आ गयीं?

संदर्भ

1. बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश, सं. आचार्य रामचन्द्र वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. बृहत् साहित्यिक निबंध, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा।
3. संतों एवं भक्तों का जीवन चरित्र, डॉ. विक्रम सिंह राठौड़, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर।
4. साहित्यिक निबंध, गणपति चन्द्र गुप्त, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. सूरसागर सार, संपादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद।
6. हिन्दी साहित्य कोश, पारिभाषिक शब्दावली (भाग–1) प्रधान सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी।